भविष्य का नया प्रतिमान गढ़ता आज का नारीवादी आंदोलन

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,
विभागाध्यक्ष–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ, उ.प्र–226017

नारीवाद का भविष्य भूमंडलीकरण के इस दौर में कैसा है ? कॉरपोरेट पूँजी के खिलाफ व्यापक सामाजिक सुधार के लिए क्या स्त्रियाँ सक्रिय होंगी या फिर वे पैसा कमाने वाली सेलिब्रेटी हो जाऐंगी और मौजूदा सांस्कृतिक ताकतों के सामने घुटने टेक देंगी? आखिर स्त्री कैसा भविष्य चाहती हैं ? प्रश्नों की इन कँटीली झाड़ियों के बीच समकालीन नारीवाद की बहस का केंद्रीय मुद्दा है–परिवार और कार्यक्षेत्र। दशकों से समान काम और समान वेतन की माँग करने वाली स्त्रियाँ, मातृत्व और पत्नीत्व की आरोपित भूमिकाओं से मुक्ति चाहने वाली स्त्रियाँ आज बिल्कुल भिन्न–भिन्न मुद्दों का सामना कर रही हैं। उन पर सांस्कृतिक दबाव है कि वे अमीर बनें और उत्पादक बनें।

एक प्रश्न उठता है कि क्या नारीवाद अपनी सफलता से खुद ही कुंठित हो गया है? भूमंडलीकरण के कारण व्यापक स्तर पर आर्थिक स्वतंत्रता के साथ स्त्रियाँ अब नारीवादी कलेवर उतार फेंकना चाह रही हैं या फिर नारीवाद ने मातृत्व का गौरव गान नहीं किया ? विशेषकर पारिवारिक घर–तोड़कर दृष्टिकोण के कारण नारीवाद का अवमूल्यन हुआ है, या फिर यह लगभग प्रभावशून्य हो गया है।

तत्कालीन समय में सबसे बड़ी समस्या तो स्त्री आंदोलनकारियों में बढ़ता हुआ वर्ग भेद है। शक्तिशाली और समृद्ध स्त्रियाँ उन कारणों पर ध्यान नहीं देना चाहतीं या सक्रिय होना नहीं चाहतीं जो गरीब स्त्रियों के हक में है। राज्य की कल्याणकारी योजना यदि क्षीण हो रही हैं तो बहुतों का यह सोचना है कि हमें क्या। राज्य यदि दमन का सहारा लेता है, खासकर धार्मिक मतांधता के साथ सक्रिय होता है तो स्त्रियाँ भी इस दमन में साथ देती हुई नजर आ रही हैं।[1] उन्हें फर्क नहीं पड़ता यदि किसी विधर्मी गर्भवती स्त्री का बलात्कार होता है। उनके अनुसार हम ठीक हैं और जब तक हम ठीक रहेंगे हमें दूसरे की चिंता से मतलब? इसी प्रकार पहली दुनिया की स्त्रियाँ तीसरी दुनिया की स्त्रियों की चिंता करने से कतराती हुई दिखाई पड़ रही हैं। वे 'कास्मेटिक सर्जरी', 'ईटिंग डिस्आर्डर' आदि के मुद्दों के अलावा अन्य सामाजिक मुद्दों पर खामोश नजर आती हैं, बल्कि सुख–सुविधा संपन्न स्त्रियाँ चाहे अमेरिका हो या भारत कमजोर गरीब स्त्री के श्रम का शोषण करने से भी नहीं चूकतीं। ऐसी बहुतेरी स्त्रियाँ हैं जो अपनी घरेलू नौकरानी तथा नर्स आदि का शोषण करती हैं। और शोषण के इन मुद्दों पर दूसरे दौर की नारीवाद का ध्यान ही नहीं गया था।

नव–नारीवादी स्त्रियाँ भी इस पर ध्यान नहीं दे रहीं थीं। वे स्त्री स्वतंत्रता की चर्चा तो करती हैं, मगर इसके दौरान अपने कैरियर की चिंता ज्यादा करती हैं। वे अपने पेशे में डॉक्टर, वकील, इंजीनियर की हैसियत से आगे नहीं बढ़तीं। बहुत हुआ तो कुछ सार्वजनिक मंचों पर भाषण दे दिया या थोड़ा–बहुत दान कर दिया पर सक्रिय रूप से ये व्यवस्था के खिलाफ नहीं जातीं। स्त्री को संविधान और कानून में समानता मिल भी जाए

तब भी पुरूषों की भाँति ये भी अपने व्यक्तिगत कैरियर में उलझी रहती हैं। तब क्या नारीवाद व्यापक सामाजिक फलक की संस्थाओं में सुधार और श्रम तथा स्वास्थ्य की सुविधा आदि पर ध्यान देगा ? आखिर स्त्री को सत्ता क्यों नहीं मिल रही है– यह अपने–आप में एक अहम सवाल है। भारत जैसे देश में अब भी मुख्यधारा में स्त्रियों की संख्या प्रायः नगण्य सी ही है। क्या कारण है कि राजनीति में वे आ नहीं पा रहीं हैं और यदि आ भी जाती हैं तो ऐसे बहुतेरे मंत्रालय हैं, विशेषकर रक्षा मंत्रालय,गृह मंत्रालय जिसमें स्वतंत्रता के इतने सालों के बाद कोई स्त्री मंत्री नहीं बन पायीं हैं। सोपानीकरण की परंपरा में यदि वह प्रधानमंत्री बनी है तब भी पुरूषों की भांति आचरण करने को बाध्य हुई, जैसा कि इमरजेंसी के दौरान इंदिरा गाँधी ने किया था। जनतंत्र की हत्या का प्रयास कोई भी स्त्री नहीं कर सकती।[2] कुल मिलाकर कहने का तात्पर्य यहाँ यह है कि नारीवाद को अब इस आंदोलन को आगे बढ़ाना है।

प्रख्यात नारीवादी दार्शनिक सिमॉन द बुआ ने अपनी चर्चित कृति द सेकेंड सेक्स में एक जगह लिखा है कि स्त्री तू पैदा नहीं होती, बना दी जाती है।' आज का नारीवादी आंदोलन सिमॉन के युग से बहुत आगे जा चुका है, ऐसा कहना गलत नहीं। किंतु, विश्व के स्तर पर प्रचलित कई नारीवादी विचारधारा और उन पर आधारित नारीवादी एजेंडा पर गौर करने से कभी–कभी गलतफहमी होती है कि जो बुनियादी समझ सिमॉन की कृति में मौजूद है वह आज की विभिन्न विचारधाराओं के प्रवर्तकों और व्यवहारकों के लिए नारा हो सकता है लेकिन उनकी बुनियादी समझ का अंतर्निहित घटक या तत्व नहीं लगता। सिमॉन की सोच की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने न केवल यूरोपीय और पश्चिमी संस्कृति, मनोविज्ञान, सामाजिकता आदि का गंभीर अध्ययन किया था, बल्कि एशियाई और विशेषकर हिंदुस्तानी सभ्यता, संस्कृति, सामाजिक मनोविज्ञान आदि की भी उतनी ही सूक्ष्म पकड़ हासिल की थी। जिस पाश्चात्य नारीवादी आंदोलन की छाप हिंदुस्तानी नारीवादी सोच और व्यावहारिकता में नकल की, वह एक हद तक पिछले कुछ साल पहले तक स्पष्ट दिखाई देती है,जिसमें सिमॉन ने पहली चोट की थी।[3]

यहाँ वास्तविकता यह है कि नारीवाद का दुश्मन न तो पुरूष है और न तो पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था। बल्कि नारीवाद का असल दुश्मन है कॉरपोरेट पूँजी जिसको अब तक नारीवादी स्त्रियाँ सही परिप्रेक्ष्य में समझ नहीं पाई हैं।[4] लेकिन वर्तमान में पितृसत्ता का सामना करना नारीवाद को आ गया है। समाज और संप्रदाय तथा परिवार पर दबाव कॉरपोरेट पूँजी से पड़ता है। यही वह पूँजी है जो कैरियर की सफलता और पैसा कमाने को ही सर्वोपरि मानता है और धीरे–धीरे न केवल पुरूषों को बल्कि स्त्रियों को भी एक 'वर्क होलिक' आत्म में परिणत कर देता है। ये नये कॉरपोरेट शहर हैं, यानी कॉरपोरेट कैम्पस जहाँ कर्मचारियों को घर जैसी सुविधा दी जाती है। कार्य क्षेत्र ही घर जैसा हो जाए तो वापस घर जाने की जरूरत ही नहीं। इन आफिसों में समाज सेवा की भी सुविधा है। यहाँ डॉक्टर हैं, शिशुसदन हैं। इन्हें कॉरपोरेट सिटी कहते हैं। जो लोग इनका हिस्सा हैं उन्हें हर तरह से सुरक्षित रखा जाता है। उन्हें उनका पूरा दाय भाग दिया जाता है और जो इनका हिस्सा नहीं हैं उन्हें वे राज्य व्यवस्था द्वारा दी जाने वाली अपर्याप्त सुविधाओं में ही संतोष पाना होगा। सूजन फालुदी भी इस कॉरपोरेट पूँजी के विध्वंसकारी परिणामों की चर्चा करती हैं। सूजन फालुदी अपनी पुस्तक 'स्टिफटेड' में लिखती हैं कि मीडिया के द्वारा धन, नाम और सेलिब्रिटी को ही प्रधान मूल्य की ही भाँति प्रोत्साहित किया जा रहा है। कुल– मिलाकर नागरिक समाज का यह निजीकरण है। एक प्रकार की अराजनीतिकृत सजावटी संस्कृति, जबकि स्त्री एक ऐसे समाज में रहती आई है जहाँ सार्वजनिक जीवन के कुछ

जरूरी कामों को पुरूष करते हैं और गृहस्थी के काम स्त्रियाँ करती हैं। आज व्यक्ति ऐसी संस्कृति में रह रहा है जो लोगों से किसी प्रकार की सक्रियता की माँग नहीं करता बल्कि एक सजावटी उपभोक्ता के रूप में उन्हें बनाए रखने का प्रयत्न करता है। नारीवाद आंदोलन अन्य सभी आंदोलनों के समकक्ष है, पुरूष भी आज इन्हीं उपभोक्तावादी भूमंडलीय ताकतों के खिलाफ लड़ रहा है। वह भी सबल नहीं रहा। श्रम का स्त्रीकरण होता जा रहा है। अतः सूजन फालुदी के अनुसार पुरूष की सहायता के बिना स्त्री ने सत्तर के दशक में जो कुछ भी सोचा था उसे आज वह अकेले हासिल नहीं कर पायेगी। उसे भी मानवाधिकार के लिए किये गये अन्य नये–नये आंदोलनों से जुड़ना होगा। ऐसे बहुत सारे मुद्दे हैं जो पहले नारीवाद द्वारा उठाए गए थे किंतु दूसरे आंदोलनों ने उन्हें हड़प लिया है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण तथा श्रम और स्वास्थ्य सुधार की माँग। किंतु इसके बावजूद भी नारीवाद द्वारा उठाए गए मुद्दों के सांस्कृतिक बहस के केंद्र में स्त्री है। स्त्री वहाँ समय–समय पर अदृश्य नजर आ सकती है किंतु ये उठाये गए मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दे बनते जा रहे हैं। हालाँकि मीडिया की मुख्यधारा में नारीवादी मुद्दों को इस रूप में चिह्नित नहीं किया जाएगा किंतु स्त्री आंदोलन किसी संस्थागत समर्थन की अपेक्षा नहीं रखता। बिना मीडिया कवरेज के और बिना सेलिब्रेटी हुए भी स्त्री अपने आंदोलन को जीवित रखने का हौसला रखती है। आज भी स्त्री छुपे हुए अन्याय, रूढ़ियों और अनाम समस्याओं से जूझ रही है। और इनपर केवल स्त्री ही प्रकाश डालने में समर्थ है, क्योंकि वह भुक्तभोगी है बल्कि नव–नारीवाद को तो अब नये मुद्दे उठाने होंगे उन्हें परिभाषित करना होगा और नेतृत्व की बागडोर संभालना होगा।[5]

आज संयुक्त परिवार की परिकल्पना टूटती नजर आ रही है क्योंकि भूमंडलीकरण ने दो व्यक्तियों के आय पर आधारित परिवार (एकल) को आदर्श के रूप में रख दिया है और स्त्री के मन में उपलब्धि का यह नया अहसास कि उसके पास परिवार और कार्य दोनों हैं, एक ऐसी परिस्थिति बनती है जो गृहस्थी और सामुदायिक जीवन दोनों का अवमूल्यन करती हुई नजर आ रही है। जबकि आर्थिक सफलता के बदले जीवन में गुणवत्ता का होना ज्यादा जरूरी है। कॉरपोरेट जीवन के बदले नागरिक समाज को बचाना ज्यादा आवश्यक है। आज समकालीन दौर में क्या संस्कृति ने मौजूदा हालत से समझौता कर लिया ? जैसे अन्य और सब आंदोलन बुझ गए वैसे ही बाज़ार में आकर नारीवाद भी खामोश होता लग रहा है। यदि भारतीय समाज पूँजी पर आधारित है तो सब कुछ को नकारना बड़ा कठिन है। क्यों नहीं स्त्री वर्ग भी इसे समझने की चेष्टा करे और इसमें अपना व्यक्तिगत स्थान निर्धारित करे। उसके लिए सामाजिक पक्षधरता इतनी अनिवार्य क्यों ? अपने चेहरे का आईने में देखना किसे नहीं अच्छा लगता ? पर इसका मतलब यह नहीं कि वह आत्मछवि के शिकार हों जाएँ। हाँ, थोड़ा–बहुत गुरूर आवश्यक है। यह हमें जिंदगी जीने में मदद करता है। ऐसी उपभोक्ता संस्कृति से स्त्री का लगाव महसूस करना गलत नहीं। मगर जो संस्कृति बार–बार यह संदेश दे रही हो कि अपने को प्यार करो, अपने पर खर्च करो और अब खर्च करते हुए स्वयं को अपराधी मत महसूस करो, इस संदेश को आत्मसात करना गलत होगा। अन्ततः उपभोक्तावाद स्त्री को जींस में बदल देगा। और यदि नारीवाद आनंद का पक्षधर हो और स्त्री कामना को महत्त्व दे तो संभव है इस घेरे में अधिकतर स्त्रियों को बंदी बनाना बड़ा आसान होगा क्योंकि हर ओर से यही आवाज है कि अधिक से अधिक सामान खरीदो, अधिक सेक्सी अप्रोच अपनाना चाहिए, इससे तुम्हें अच्छा लगेगा।[6] पूँजीवाद जानता है कि जब तक स्त्री को उपभोक्तावादी जाल में नहीं फँसाया जाएगा तब तक वह पूँजी का समर्थन नहीं करेगी। अब यह तो स्त्री पर निर्भर करता है कि भविष्य में वह कैसा जीवन चाहती है ? निष्क्रिय उपभोक्ता के

रूप में या फिर सक्रिय सृजनशील व्यक्ति के रूप में। भारत में देश की गुलामी और स्त्रियों की गुलामी दो पृथक मुद्दे कभी नहीं रहे। आजादी से पहले पुनर्जागरण काल में ही चलाए गए सुधार–आंदोलनों के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आह्वान पर भारत की शिक्षित–अशिक्षित हजारों–हजार स्त्रियों ने आजादी की लड़ाई में भाग लिया। उनकी यह लड़ाई पुरूषों के खिलाफ अपनी आजादी के लिए नहीं थी, बल्कि पुरूषों के साथ मिलकर देश की आजादी के लिए थी। देश को आजाद कराने के बाद स्वाधीन भारत के विधान–निर्माण में भी विदुषी स्त्रियों की भागीदारी रही। तो यह कैसे संभव था कि आजादी के बाद भारतीय संविधान में उन्हें समानाधिकारों से वंचित रखा जाता ! भारतीय गणतंत्र की स्थापना के साथ ही भारतीय स्त्रियों ने वे सभी वैधानिक अधिकार प्राप्त कर लिए, जिनके लिए पश्चिमी स्त्रियों को इतिहास में एक लंबे समय तक लड़ाई लड़नी पड़ी थी। आज के समय में बड़े से बड़ा पद ऐसा नहीं है, जो भारत में स्त्री को न दिया जा सके अथवा वह उसे अपनी योग्यता से स्वयं न हासिल कर सकें। केवल इसके लिए स्वयं को ही इस योग्य बनाना है कि अधिकार मींगने न पड़ें, स्वयं ही अपने पास खिंचे चले आएं।[7] इस रूप में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का उदाहरण हम सबके सामने है।

राष्ट्र के सर्वोच्च पद प्रधान मंत्रित्व तक को जब भारतीय नारी हासिल कर सकती है, पुलिस अधिकारी, जज, पायलेट, इंजीनियर, चार्टेड एकाउंटेंट, बैंक मैनेजर कलेक्टर जैसे कार्य–क्षेत्रों में अपनी योग्यता और कार्य कुशलता की धाक जमा सकती है। ऊँची पहाड़ी चोटियों पर आरोहण कर सकती है, ऐवरेस्ट तक उसके जाने पर कोई रोक नहीं, तो सवाल उठता है कि मुक्ति कैसी ? किससे ? अधिकारों की लड़ाई किसलिए ? प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए रूकावट कहाँ है?[8] जाहिर है कि बराबरी के वैधानिक अधिकार उन्हें प्राप्त हैं।[9] लेकिन समाज क्षेत्र में उनका कार्यान्वयन अभी ठीक से नहीं हो पाया है। सामाजिक मान्यता उन्हें नहीं मिली है। इसलिए पद, सुविधा से सम्पन्न मुट्ठी भर महिलाओं को छोड़कर औसत स्त्री के साथ सामाजिक अधिकारों में बदलने के लिए समय लगता है। शीघ्र लक्ष्य–प्राप्ति के लिए कालावधि को सुविचारित, सुनियोजित प्रयत्नों से छोटा करना होगा। प्रगति को एक दिशा देनी होगी। भले ही हमारी राष्ट्रीय सामाजिक नीतियों में कमी रही हो, लेकिन प्रश्न यह है कि महिलाओं ने उसके लिए क्या किया ? आजादी के इतने वर्षों बाद भी क्या स्त्रियों ने स्वयं को इसके लिए तैयार किया ?[10] उत्तर मिलेगा नहीं। हकीकत यह है कि उन्होंने अधिकारों की माँग के साथ जिम्मेदारियों का तालमेल नहीं बैठाया। बराबरी की धुन में स्त्री की पुरूष से ऊँची स्थिति को भुला दिया। आजादी के नशे में, अधिकारों की होड़ में परस्पर निर्भरता व पूरकता की बात उनके ध्यान से ओझल हो गई। आकर्षण व आदान–प्रदान के लिए विषमता और पूरकता ही चाहिए। प्राकृतिक वैषम्य को किसी समता के सिद्धान्त से मिटाया नहीं जा सकता। केवल मानवीय आधार पर और सभ्यता के तकाजे से अनुकूलन की, सहायोग की स्थितियाँ पैदा कर समाधान को राह दी जा सकती है। भारत में नारी–मुक्ति आंदोलन की दिशा यही हो सकती है–कानूनी अधिकारों का समझदारी पूर्ण सदुपयोग और सामाजिक धरातल पर उनका कार्यान्वयन।[11] घर से बाहर कर्मक्षेत्र में स्त्री–पुरूषों के बीच सहज मानवीय संबंधों का विकास। मित्र, सहपाठी और सहकर्मी भावना का उन्नयन और नारी की मानवी रूप में मान्यता (दासी बनाम देवी अथवा भोग्या बनाम पूज्या की बात तो बहुत हो चुकी)।[12]

इसमें कोई दो राय नहीं कि इस तरह आपसी समझदारी और परस्पर सम्मान की भावना का विकास करने से न पुरूष को आक्रामक रूख अख्तियार करने की जरूरत होगी, न स्त्री को अपने बढ़ते कदम पीछे लौटाने की कभी जरूरत

पड़ेगी। नारी की स्थिति भले ही स्थानिक प्रभाव व काल प्रवाह में बदलती रही हो, उसकी छवि भले ही समय–समय पर दबती उभरती रही हो, परन्तु हर युग के निर्माण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उसकी अस्मिता को लेकर साहित्य में हमेशा ही समय–सापेक्ष अनेकानेक प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। उनका समाधान हुआ है या नहीं। यह सब कुछ निरुत्तरित ही है जब वह 'मानवी' रूप में उभरकर सामने न आये। सब नाते रिश्तों के बावजूद भी वह स्वतन्त्र ईकाई भी है और स्वतन्त्र अस्तित्व वाली भी है। साहित्य दिशा–बोधक एवं दिशा स्तम्भ है। आज हमारा युग बोध बदल गया है, जीवन पद्धतियाँ बदल गई हैं। इसी अनुसार स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में नये समीकरण की तलाश है। नये मूल्यों का निर्माण करने से ही नये युग की नारी की नयी प्रतिभा उभरेगी। 'मानवी' के रूप में सामने वह आयेगी गौरवमयी पहचान देती हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधी आबादी–इंदु भारती, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,नई दिल्ली,पृ0 31–40
2. महिला लेखन : स्वतंत्र चिन्तन की दिशाएं, समकालीन महिला लेखन, डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ,पूजा प्रकाशन,आई–7,विजय चौक लक्ष्मी नगर,दिल्ली–92,पृ 17–61
3. आधी आबादी–इंदु भारती, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,नई दिल्ली,पृ031–40
4. भोग और भोगा जाना,बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ (भूमण्डलीकरण और स्त्री के प्रश्न)–प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ0221
5. भोग और भोगा जाना,बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ (भूमण्डलीकरण और स्त्री के प्रश्न)–प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ0.217–218
6. आधी दुनिया का श्रम और भूमण्डीकरण,उपनिवेश में स्त्री–मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ–प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003,पृ021–35
7. नारी शोषण आइने और आयाम–आशारानी व्होरा,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1994,पृ0 250–251
8. नारी शोषण आइने और आयाम–आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1994,पृ0251
9. आधी आबादी का यथार्थ ,भारतीय नारी, डॉ0 शारदा अग्रवाल,राधा पब्लिकेशन्स,दरियागंज, नई दिल्ली,2009,सम्पादकीय भाग से
10. नारी शोषण आइने और आयाम–आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,1994,पृ0251
11. महिला अधिकार : सिद्धान्त एवं व्यवहार, आधी आबादी का यथार्थ ,भारतीय नारी, डॉ शारदा अग्रवाल,सम्पादकीय, पृ067–72
12. नारी शोषण आइने और आयाम–आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994 ,पृ0251–252

Copyright © 2017, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.